



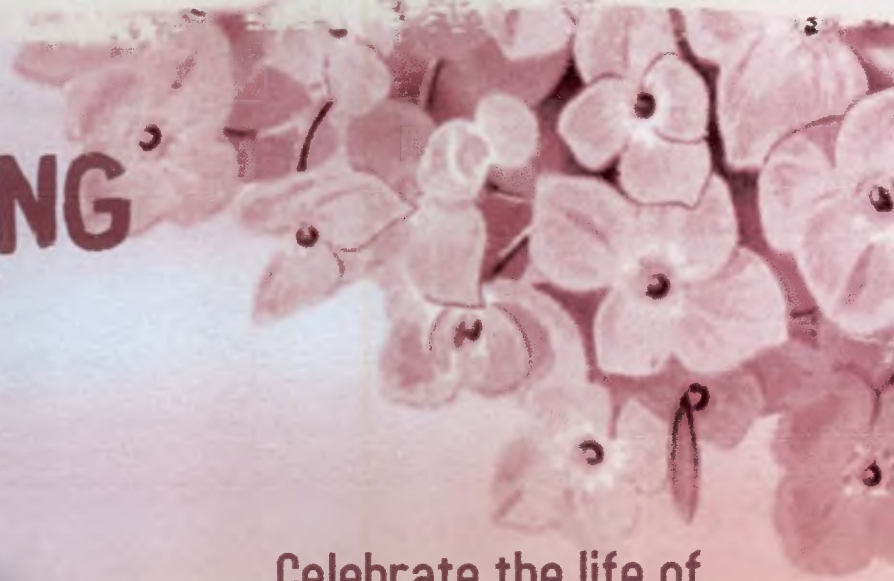
प्रकाशस्तम्भ गुरुवाणी मणिमाला

१९८१



PRAKASH STAMBH
GURU·BANI·MANI·MALA

IN LOVING MEMORY



Celebrate the life of
Nirmala Chandra

MARCH 14, 1927- APRIL 30, 2019

She was our 2nd
Mother – not less
than our 1st...the
affection and
commitment to us,
shaped us...Join us as
we pray and go down
the memory path of
life with her...and pray
for the strength to
live with her memories
and rise to her values.



Ashwini & Vandana

India-Inspires.com

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

- १— जगद्गुरु संन्यास आश्रम कनखल-हरिद्वार
- २— शिव-मन्दिर संन्यास मठ वजीराबाद—
- ३— ६/२२ रूपनगर-दिल्ली-६

पी० ओ० तिमारपुर दिल्ली-६

प्रथमावृत्ति १०००

मूल्य-१रु० २५ नये पैसे

प्रकाशक:—

अध्यात्म प्रकाशन मण्डल-दिल्ली-६

मुद्रक—

स्वागी फाइन आर्ट प्रेस,

कटरा लुशहालराय, दिल्ली-६ ।

संक्षिप्त परिचय

भगवान सदैव किसी न किसी विभूति द्वारा विश्व का कल्याण करते रहते हैं। इसी को हम अवतार वाद मानते हैं। आज विश्व के अशान्त वायुमण्डल को शान्त करने का श्रेय इन्हीं महापुरुषों को है जिनके हम सदा ऋणी हैं।

आचार्य महामण्डलेश्वर श्री स्वामी प्रकाशानन्द जी महाराज का आविर्भाव भगवान् कृष्ण की जन्म-भूमि व्रजमें श्रेष्ठतम द्विज घर में हुआ। माता-पिता के वात्सल्य को प्राप्त करते रहना किसे अच्छा नहीं लगता। परन्तु आपने वाल्यकाल में ही माता-पिता के वात्सल्य से सरस्वती देवी की आराधना को सर्वोत्तम समझ कर काशी नगरी में संस्कृत का दुरुह अध्ययन किया। जीवन की १६ शरद् ऋतुओं को विद्यार्थी जीवन में व्यतीत करके भगवती माँ के आदेशानुसार संसार से वैराग्य ले लिया। तबसे अब तक के समस्त जीवन को आपने धर्म का उत्थान, मानवता के आविष्कार तथा भारत-माता की सेवा के हेतु लगा दिया है। आज आप निरंजनी पीठ के द्वितीय आचार्य महामण्डलेश्वर हैं। आप अपने हिन्दु समाज को गौरवान्वित देखने की लालसा से अथक परिश्रम कर रहे हैं।

श्री गुरुदेव के क्षणमात्र के सम्पर्क से ही जीवन में प्रकाश आता है। अपने इस परमार्थिक ध्येय के लिए उन्होंने अपने तन-मन-धन का सदैव त्याग किया है। माँ जगदम्बा उसकी पूर्ति में अपना पावन कर उन पर सदैव बनाए रख और हम सबको उनकी सेवा का अवसर प्रदान करें।

—निर्मला

पाठकों से:—

इस सुख दुःखमय जीवन संघर्ष में सदैव ही आचार्य संत-महापुरुषों की दिव्य वाणी ने हमें आलोक दिखाया है। प्रकाश स्तम्भ में पूज्यपाद श्री आचार्य महामण्डलेश्वर श्री स्वामी प्रकाशानन्द जी महाराज की असीमित अलौकिक वाणी में से कुछ वाक्याञ्जली का संचयन मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार किया है। पाठक इसे पढ़ कर लाभ उठाएं। अध्यात्मवाद के बिना मानव जीवन खोखला है। वह महापुरुषों द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। इस दृष्टि से हमने 'अध्यात्म प्रकाशन मंडल' की स्थापना की है। जिसका श्रेय गुरु-महाराज को है। गुरु भगवान की साहित्य-निधि में से कुछ और पुस्तकें भी मंडल प्रकाशित करने का प्रयास कर रहा है। 'प्रकाश की और' 'चेतना' 'विवेक' इत्यादि। पाठक अपनी प्रतियां सुरक्षित करा लें-क्योंकि कई कारणों से विशेषकर धनाभाव से, बहुत ही अल्प संख्या में पुस्तकें छपाई जाएंगी।

इस पुस्तक में मेरा अपना कुछ न होकर सब कुछ गुरु का प्रसाद है। अशान्त मानव शान्ति प्राप्त करे यही मेरी भावना है। मेरे इस प्रथम प्रयास में त्रुटियाँ सम्भव हैं। पाठक क्षमा करें विषय संकेत भी रह गया है।

लेखिका:—

ॐ सर्व द्वन्द्व हरी गुरुः

समर्पण-

गुरुदेव भगवन् !

आपके श्री मुखारविन्द से निर्मल गंगाधार वत् प्रवाहित सुमधुर ओजस्वनी वाणी में मुझे स्नान करने का अवसर मिला । इच्छा है कि जो इस पतित पावनी धारा स्नान से वंचित हैं उन्हें भी इस मार्ग की ओर बढ़ने को प्रकाश मिले ।

आशीर्वाद दें कि आपके इस प्रकाश पुञ्ज को शिरोधार्य करने के लिये मैं स्तम्भ बन सकूँ और संसार यात्रा के पथिकों को यह आलोक दिखाने की पुण्य भागी बनूँ । गुरु-कृपा से क्या कुछ नहीं हो सकता बिन कहे ही जगत् प्रसिद्ध है ।

श्री गुरु पद नख मणि गण ज्योति ।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती ।

गुरु पुणिमा)

संवत् २०१६)

६/२२ रूपनगर

दिल्ली-६

—निर्मला

१७-७-६२

✽ शुभाशीर्वाद ✽

✽ प्रकाश-स्तम्भ ✽

(गुरु बाणी मणिमाला)

की लेखिका आत्मस्वरूपा बेटी निर्मला को कोटिश : शुभाशीर्वाद प्रदान करता हुआ अत्यधिक गौरव का अनुभव करता हूँ कि यह देवी शक्ति-मेरे प्रकाश पुञ्ज को लेकर जगत् के अन्धकार को ध्वंसकर निर्मल पथ दिखाएंगी । क्यों कि अपनी ही वाणी का पुस्तक रूप देखकर हर्ष होता है अतः इसकी भगवती तन- मन-धन से वृद्धि करें । शुभंभूयात् सर्वदा ।

आचार्यमहामण्डलेश्वर

प्रकाशानन्द व्याकरणवेदान्ताचार्य

जगद्गुरु संन्यास आश्रम कनखल - हरिद्वार

प्रकाश-स्तम्भ

गुरु-बाणी-मणिमाला

१—देखिये ! सुनिये ! समझिये ! और अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न कीजिए ।

* * * *

२—यह जगत परमेश्वर की लीला है । इसे सत्य मान कर कार्य-कारण विवेक मत करो । इस चिन्मयी, आनन्दमयी, सन्मयी लीला की यथार्थकता जान लो । पुनः कहीं कभी शोक मोह तुम्हें स्पर्श नहीं कर पाएंगे ।

* * * *

३—सत्य से ही सूर्य तप रहा है । सत्य पर ही पृथ्वी टिकी हुई है । सत्य भाषण सब से बड़ा धर्म है । सत्य पर ही स्वर्ग

प्रतिष्ठित है। एक हजार अश्वमेध को और एक सत्य को यदि तराजू से तोला जाए तो सत्य का ही पलड़ा भारी होगा।

* * * * *
४—तप किसे कहते हैं अनेक प्रकार के कठोर व्रत धारण करना सात्विक तप नहीं है। सत्कर्मों के तथा धर्माचरण के लिए कष्ट सहने का नाम तप है।

* * * * *
५—निज धर्म को त्यज कर परधर्म ग्रहण करने वाला अन्त में ठीक उसी प्रकार कहीं का नहीं रहता जिस प्रकार हंस की चाल चलने वाला काग।

* * * * *
६—साधक ! तुम जिस पर विचार करो अपने जीवन की दृष्टि से करो। एक क्षण मात्र में ही तुम्हें अनुभव होगा कि वह विचार तुम्हारे जीवन स्तर को उन्नत करता है अथवा अवन्त। तर्क और युक्तियों के जाल में फँसना जीवन को निराश्रय व निःसार बनाना है।

* * * * *
७—श्रद्धा विश्वास पर ही जीवन बनाओ।

* * * * *
८—जीव ! तुम्हारे अन्तःस्थल में एक परम दिव्य ज्योति अर्हर्निश जगमगाती रहती है वह तुम्हारा ही अभिन्न स्वरूप है। उसे कामनाओं की कुत्सित यवनिका से मत ढको।

९—तत ! मान लो भगवान् तुम्हारे समक्ष इसी समय आ जाए जो उनकी दयालुता देखते हुए बहुत अंश में सम्भव है। पर तुम उन्हें कहाँ बैठोगे। क्या तुम्हारे पास उन्हें बैठाने को उपयुक्त स्थान है ? हृदय टटोलो-भगवान का मन्दिर हृदय ही है। अतः उसे कभी मलिन न होने दो सदैव स्वच्छ निर्मल रखो।

* * * * *
१०—जिसका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल और आडम्बर हीन है विशुद्ध प्रेम निष्ठा वाला है उसी पर सर्वान्तर्यामी प्रभु प्रसन्न होते हैं।

* * * * *
११—हम स्वयं अपने मित्र हैं और स्वयं अपने शत्रु। हम मित्र बने न कि शत्रु ! शुद्ध विचारों की प्रेरणा से आत्मा कल्याण पथ गामी बनता है।

* * * * *
१२—जीव में दोनों बनने की योग्यता है। स्वतन्त्रता है जो चाहे बने। एक उसका अपना स्वरूप है। दूसरा कुसंग से आगत हुआ है।

* * * * *
१३—स्वार्थ के लिए किया कर्म भार-रूप होता है। कर्तव्य-बुद्धि से परार्थ क्रियमाण कर्म भार रूप कभी नहीं होता।

१४—आत्म प्रेरणा अपने शुभ विचारों के संचालन का द्वितीय नाम है।

* * * *

१५—दुःख स्मरण भी जीव की आत्मा को संकुचित करता है और जीवन को हीनता की ओर ले जाता है।

* * * *

१६—दुःख स्मृति जीवन का क्षय रोग है।

* * * *

१७—संसार में कोई कार्य कठिन नहीं केवल दृढ़ संकल्प और प्रयत्न की आवश्यकता है।

* * * *

१८—ऐसी कोई ऊँचाई नहीं जहाँ नारी न चढ़ सके। नारी स्वयं नारायणी है यदि स्व को समझे तो।

* * * *

१९—गुरु वचन यथार्थ में मोतियों की माला है। पर कोई पारखी ही उसका मूल्य जानता है।

* * * *

२०—शास्त्रों में श्रद्धा को सुरभि कहा है और वाञ्छा पूर्ण करने वाली लिखा है। परन्तु कोई उसे तर्क खुरी से काट दे तो बुद्धि का दुरुपयोग माना जाएगा।

२१—इस जगत् में ऐसे व्यक्तियों की कमी है जो उसकी दी हुई विभूति का धन्यवाद दें और उसकी भेजी हुई विपत्ति पर सन्तोष करें।

* * * *

२२—तृप्ति मन से होती है न कि धन से। यदि तुम्हारे मन के भीतर प्रेम, श्रद्धा, सन्तोष, सेवा का वास है तो तुम सबसे बड़े धनी हो।

* * * *

२३—जो किसी वस्तु को अपना न समझे तथा अपने शरीर के अस्तित्व को भूल जाए वही सच्चा संन्यासी है।

* * * *

२४—रामकृष्ण के इन वचनों को सदैव ध्यान में रखो कि तुम्हें भगवान् रूपी माता की गोद में बिल्ली के बच्चों की तरह निर्भीक व पूर्ण विश्वासी होकर रहना चाहिये बन्दर के बच्चे की तरह भयातुर व अविश्वासी होकर नहीं।

* * * *

२५—जैसे बच्चा अपनी माता की गोद में अपने को सुरक्षित समझ कर निर्भीक हो पड़ा रहता है उसी प्रकार जीव को जगत्जननी की गोद में सदैव अपने को सुरक्षित समझना चाहिये।

२६—मन और इन्द्रियों की निरर्थक प्रवृत्तियों को रोक कर मन प्रवाह को भक्ति पोषक मात्र में लगा दो दैवी बल प्रगट होगा ।

* * * *

२७—जब तक वासना-देह का त्याग नहीं होता तब तक नाम रूपात्मक जगत का बाध नहीं होता ।

* * * *

२८—जब तक मन, इन्द्रियाँ, शरीर स्वस्थ हैं और मृत्यु नहीं आ घेरती उससे पहले ही समझदार मनुष्य को कल्याण मार्ग पर चलना आरम्भ करना चाहिये ।

* * * *

२९—मन को शरीर, इन्द्रियों के द्वारा वश में नहीं किया जा सकता है । कोई हाथ या पैर से मन को पकड़ना चाहे तो यह एक असम्भव सी बात है । मन को तो बुद्धि के द्वारा ही वश में किया जा सकता है ।

* * * *

३०—मन इतना बड़ा पुरुषार्थी है कि जो समझ में आ जाए उसे करके ही छोड़ेगा और इसके साथ ही साथ मन इतना आलसी है कि हाथ उठा कर एक लोटा पानी भी नहीं उठाना चाहता ।

३१—क्षमा के लिए सर्वोत्तम उदाहरण पृथ्वी माता है जो मनुष्य द्वारा अपने प्रति दुर्व्यवहारों को सहन करती हुई भी उसकी जान बचाने के साधन देती रहती है ।

* * * *

३२—कोमलता से कठोरता का विनाश होता है ।

* * * *

३३—ज्ञान और वैराग्य-भक्ति के दो पुत्र हैं जिनके द्वारा ही वह अलंकृत होती है ।

* * * *

३४—चाहे धन, मान, कुटुम्ब का तथा प्राणों का भी त्याग हो जाए परन्तु सत्य, अहिंसा और प्रेम का त्याग कभी न किया जाए । यही सर्व धर्म का सार है ।

* * * *

३५—सब कुछ जाए पर न जाए हिन्दुत्व की टेक ।

* * * *

३६—सभी धर्मों का उपदेश एक ही-है दूसरे धर्मों की निन्दा न करो ।

* * * *

३७—समाज के समुत्थान की चिन्ता न करके स्वार्थ-साधना में धन व्यय करना महापाप है । कुवासनाओं की पूर्ति के लिए धन का दुरुपयोग ! दूसरी ओर बुभुक्षित समाज !

३८—जीवन एक अद्भुत रम्य कथा है।

* * *

३९—सकुचित समुद्र को छोड़ कर ही हम महा समुद्र की खोज में निकलें।

* * *

४०—किसी भी कवि या उपन्यास कार की प्रतिभा में इतनी चतुरता व चमत्कारिता नहीं होती जितनी आश्चर्य के धक्के बारम्बार देने वाले विधाता में होती है।

* * *

४१—प्रत्येक मनुष्य पराधीनता स्वीकार नहीं करता परन्तु दूसरों को दास बनाना चाहता है।

* * *

४२—सब से बड़ा ग्रहचक्र मानसिक दुर्बलता है।

* * *

४३—अनेक विघ्नों की चिन्ता न कर न्याय मार्ग पर साधक आगे ही बढ़े।

* * *

४४—अन्तःकरण से किया कार्य निश्चित ही सफल होता है।

* * *

४५—सोना मत बनो लोहा बनो, अर्थात् अपनी रक्षा स्वयं करो।

४६—महान के लिए धुद्रत्व का त्याग ही हवन है।

* * *

४७—वे धन्य हैं जो विश्वास के पात्र होते हैं।

* * *

४८—कमल कीचड़ में खिला हो या सुन्दर भील में उसकी आँखें सदैव सूर्य की ओर ही रहती हैं।

* * *

४९—उत्तरदायित्व को निभाना, विश्वास के पात्र बनना यह दो बातें विशाल और अलौकिक हैं।

* * *

५०—पहले स्व को पहचानो फिर दूसरों को भी पहचान सकोगे।

* * *

५१—विकास शील मानव जीवन की आत्मा, सामाजिक जातीय और राष्ट्रीय भावना ही है। इसके शब्द और अश्रु कृति ये ३ भेद माने हैं। जिनमें कृति ही मुख्य है।

* * *

५२—हमारा कर्तव्य है श्रम ! केवल चर्चा नहीं ?

* * *

५३—विचार और भावना करने से प्रथम कर्तव्यनिष्ठ होने की प्रतिज्ञा करो, तब संसार तुम्हारी सहायता करेगा। वह विश्वास रखो की संसार आपके पीछे चलेगा।

५४—गोबर की आग भस्माद्यादित होने पर भी भीतर ही भीतर सुलगती है और थोड़ासा अनावरण पाते ही प्रचण्ड हो जाती है । मानव मानस की वासना का भी यही इतिहास है ।

* * * *

५५—हमारे पतन का कारण स्मृष्टि जीवन का अभाव है ।

* * * *

५६—मानव उत्पन्न होता है परन्तु मानवता उसे स्वयं उत्पन्न करनी पड़ती है ।

* * * *

५७—आतप दुःख निवारणार्थ गाड़ी के नीचे चलता हुआ कुत्ता गाड़ी खेंचने का अभिमान करता है । गाड़ी बैलों के कन्धे पर है । कुत्ते का कोरा अभिमान है ।

* * * *

५८—आन्दोलन और कारा की अभिन्न मिश्रता होती है । समाज के जिस वर्ग में काम विषयक संयम अधिक होता है वही वर्ग अधिक कर्त्तव्य शक्ति-शाली समाज का अंगुष्ठा बनता है ।

५९—साधक के लिए परिस्थिति कभी प्रतिकूल नहीं होती है । कोई भी पाशवी शक्ति आत्म तेज का नाश नहीं कर सकती ।

* * * *

६०—भगवान श्री कृष्ण के जीवन से यह सिद्ध होता है कि स्वयं समुन्नत हो । स्वतः को श्रेष्ठ मार्ग पर लगाने से मोक्ष प्राप्त होता है । स्वयं को स्मृष्टि में विलीन करना ही जीवन की सफलता है । 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतोभयात्' । गीता०

* * * *

६१—साधिकार व्यक्ति को अनधिकार चेष्टा कदापि नहीं करनी चाहिये । क्योंकि इसमें अपमान का भय है । साधिकार के लिए अपमान मृत्यु है ।

* * * *

६२—निम्न कक्षा के वर्ग के साथ व्यवहार करते समय अपने मान को ताक में रखना होगा ।

* * * *

६३—संसार में धर्म की रक्षा के लिए जीना ही जीवन है ।

* * * *

६४—किसी न किसी प्रकार के नित्य यज्ञ के बिना व्यक्ति व राष्ट्र का उत्थान नहीं हो सकता ।

(२०)

६५—समाज विषयक कर्तव्य पालन ही अधिकार प्राप्ति का राज मार्ग है ।

* * * *

६६—दैनिक परमेश्वर प्रार्थना मानसिकोत्थान का चिह्न है ।
परमात्मा एक समय सबको अपनी उन्नति का अवसर देता है । ईश्वर को न मानना पतन चिह्न है ।

* * * *

६७—अपनी शेखी मारने वाला स्वयं पतन का कारण बनता है ।
व्यर्थ शेखी मारने वाले के लोग शत्रु बनते हैं ।

* * * *

६८—नौकर को कभी मुँह न लगाओ वह कार्य ठीक न करेगा ।

* * * *

६९—पाचक से बिगाड़ कर कभी न रखो धोखा होगा ।

* * * *

७०—बल प्रयोग की अपेक्षा नम्रता से कार्य बन जाता है ।

* * * *

७१—यदि प्रत्येक मानव गुरु बनना चाहता है तो उसे गुरु शब्दार्थ का अवगमन करके अपने गुरु को सर्वस्व मानना पड़ेगा और उन्हीं के द्वारा बताए गए उपदेशों पर विश्वास के साथ चलना होगा ।

(२१)

७२—मित्रता तभी तक रह सकती है जबकि दोनों ओर से हो ।

* * * *

७३—जीव मात्र की सेवा करना ईश्वरीय भक्ति है ।

* * * *

७४—भगड़ा करने से मित्र भी शत्रु बन जाते हैं ।

* * * *

७५—कलह को बढ़ाने की अपेक्षा शान्त करना अच्छा है ।

* * * *

७६—खुशामदी मनुष्य भयानक शत्रु है ।

* * * *

७७—बिना सोचे समझे कोई कार्य मत करो ।

* * * *

७८—मित्रों में गरीब-अमीर का भेद मत करो ।

* * * *

७९—सेवा और ज्ञान दोनों एक दूसरे के लिए आवश्यक हैं ।

* * * *

८०—किसी बड़े कार्य के योग्य बनने के लिए-पहले छोटे २ कार्यों को प्रमाणिकता से करना सीखो ।

* * * *

८१—प्रत्येक स्थान पर ईश्वर विद्यमान समझो पाप से बचोगे ।

८२—क्रोध, माया मान, लोभ आदि से बचो ।

* * * *

८३—भूठ कभी न बोलो, कोई विश्वास न करेगा ।

* * * *

८४—किसी मनुष्य से घृणा न करो न मालूम उसमें क्या गुण हैं ।

* * * *

८५—सच्चा सुख हमारे अन्दर ही है । उसे बाहर ढूँढना व्यर्थ है ।

* * * *

८६—संसार के मोह में न पड़ो मृत्यु समय दुःख न होगा ।

* * * *

८७—इसका सदैव ध्यान रखो कि एक दिन अवश्य मरना है ।

* * * *

८८—इसका सदैव ध्यान रखो कि स्वार्थ का जीवन पाप का जीवन है ।

* * * *

८९—हर कार्य में परिश्रम करना चाहिये ।

* * * *

९०—आचार्यत्व ही सब सत्ताओं का बीज मन्त्र है ।

* * * *

९१—प्रेम ही जीवन है और, भय ही मृत्यु है ।

९२—प्रत्येक मनुष्य के पीछे अतन्त्र शक्ति विद्यमान है ।

* * * *

९३—सत्य को रोँद डालो वह पुनः उठ जाएगा क्योंकि वह अविनाशी है ।

* * * *

९४—कभी दूसरे का अपमान न करो सब परमेश्वर की विभूति है ।

* * * *

९५—ईश्वर तत्व पर हमारी अटल श्रद्धा होने के कारण किसी भी विषम परिस्थितिमें हमें घबराने का कोई कारण नहीं ।

* * * *

९६—जो दूसरों का आदर करता है उसका भी आदर होता है ।

* * * *

९७—ऐसी बात न करो जिससे विचार खराब हों ।

* * * *

९८—क्रोध की अपेक्षा नरमी काम बना देती है ।

* * * *

९९—किसी को दुख न देना सब से बड़ा धर्म है ।

(२४)

१००—किसी बुरी बात को मत करो चाहे उसका भेद किसी को न लगे ।

* * * *

१०१—केसरी अपने शिकार को तुरन्त ही नहीं मारता जीवित ही पकड़ कर गुफा में ले जाता है और आराम से सो जाता है परन्तु भयभीत हो वह प्राणी सिंह के खरटे सुनता हुआ पड़ा रहता है भागता नहीं !

* * * *

१०२—किसी भी देश में क्रान्ति आसुओं से नहीं होती ! क्रान्ति को नैवेद्य की भूख होती है और वह है देश भक्त का रक्त ।

* * * *

१०३—देश स्वातन्त्र्य धर्म-रक्षक की कुञ्जी है ।

* * * *

१०४—यह माना कि प्रजा राजा को पितृवत् माने और कदापि द्रोह न करे । परन्तु बच्चों को भूखा छोड़ कर स्वयं रबड़ी चाटने वाली माँ को माँ माना जाए क्या ?

* * * *

१०५—यह जीवन एक पुष्पवाटिका ही नहीं अपितु समर-भूमि है और वह साधारण समरांगण नहीं जिसमें शत्रुओं से

(२५)

ही मोर्चा लेना पड़े । यहाँ तो स्वकीय मित्रों साथियों, कुटुम्बियों के साथ भी समर करना पड़ता है । समय आने पर तो कभी २ अपने आप से भगड़ कर स्वत्व की बलि देनी पड़ती है ।

* * * *

१०६—कलयुगी मानव गुरु, बन्धु, मित्र आदि के रूप में आने पर भी स्वकीयों के साथ राजनैतिक प्रयोग करना अपना परम धर्म समझता है ! आज सम्बंध वाचनिक है न कि हार्दिक !

* * * *

१०७—कर्म भाग्य परिवर्तन की कुञ्जी है यह जीव जैसा कर्म करता है जीव का वैसा ही भाग्य बनता है ।

* * * *

१०८—ज्ञान और कर्तव्य से मनुष्य स्वयं परमेश्वर बन सकता है ।

* * * *

१०९—ज्वालामुखी पर्वत के ऊपरी धरातल पर अंगूरों के बगीचे हों, सुन्दर पुष्पवाटिकाएं हों फिर भी अन्तस्थल में भयंकर आग धधकती रहती है, बाह्य संसार को पता भी नहीं चलता । मनुष्य जीवन का भी इतिहास यही है

(२६)

उसके अनन्त सुख, मधुरतम स्वप्न और उनके असंख्यो-
द्धानों में विशालाशा लताएं फलती रहती हैं और उन्हीं
के साथ दुःख तथा निराशाएं दहकती हैं।

* * *
११०—तत्त्व ज्ञान का प्रचार उसके आचरण में ही निहित है।

* * *
१११—माता की पुरुषार्थी सन्तान बन कर सम्मान पूर्वक
जीयो।

* * *
११२—अपनी प्राचीन तपस्या को न गंवाते हुए आगे बढ़ना
ही साधकत्व या राष्ट्रत्व है।

* * *
११३—“आयुष्य यह परमेश्वरी ऋण है” इस भावना को सदैव
जागृत रख कर कर्तव्य कर्म करो।

* * *
११४—सब शिक्षाओं का मूल भूत सिद्धान्त है आत्म दर्शन।

* * *
११५—हिन्दु संस्कृति होममय है।

* * *
११६—मित भाषण, मित व्यवहार, मित आहार, मित स्वाध्याय
तथा अन्य भी मित कार्य करने से उन्नति होती है।

(२७)

११७—संघर्ष में ही वास्तविक जीवन विकास उन्नति और
स्वतन्त्रता है।

* * *
११८—देश और गुरु सेवा में जिस वंशलता ने अपनी समूल
भेंट चढ़ा दी उसने अमर पद प्राप्त कर लिया।

* * *
११९—समान भावना हमें अजेय और विजयी बनाती है आत्म
संयम और अनुशासन से परिपूर्ण सेवा परायण जीवन
जो साध सका उसी ने यथार्थ जीवन पाया।

* * *
१२०—धर्म से आचरण करने वाले महापुरुषों को सुख कहाँ।

* * *
१२१—मैं इस विराट राष्ट्र पुरुष का साकार रूप हूँ।

* * *
१२२—गुरु या समाज से मुँह मोड़ कर कोई सम्मान पूर्वक
जीवित नहीं रह सका।

* * *
१२३—केवल राष्ट्र सेवा ही हमारे जीवन का लक्ष्य है।

* * *
१२४—स्वास्थ्य ही सुसंस्कृत और जीवन प्राणी की प्राकृतिक
अवस्था है।

(२८)

१२५—साधन की आवश्यकता हर समय हर परिस्थिति में होती है।

१२६—जो संकटों में आगे बढ़ा उसे मां ने ही बढ़ाया-दिव्य शक्ति प्रदान की और अमृतत्व पान कराया।

१२७—सम्पूर्ण ज्ञान-वैभव और यश सतत साधनानुष्ठान एवं सत्यप्रयत्नों का सुफल है।

१२८—यदि कोई घास विक्रेता घास के भार को अपने शिर पर रखकर स्वयं अश्व द्वारा यात्रा करे तो उचित है क्या ?

१२९—जो भय से रहित, निरीच्छ निस्पृह और संयमी व्यक्ति है वही सच्चा संन्यासी हो सकता है।

१३०—सूर्योदय होते ही अन्धकार स्वयं भाग जाता है।

१३१—साधना विषयक कर्तव्य पालन ही सफलता प्राप्ति का राजपथ है।

(२९)

१३२—माता पड़ी विपद में सन्तान किस लिए हम।

१३३—व्यापक अहंक्रुति में से ही विशाल कर्तव्य का निर्माण होता है।

१३४—हमारी आत्मा साक्षात् शक्ति है शक्तिमाता का साकारा-वतार है। माता की असंख्य भुजाएं हैं। दैत्य-दलनार्थ प्रभावित मातृ पग ध्वनि, अक्रान्त वसुन्धरा के लिए कल्याणकारी आह्वान है। मां की सृष्टि समुद्र की अग्नि है। मां का हुंकार प्रलय का और भक्त रक्षण का प्रचण्ड गर्जन है। मां की कृपा ही वास्तविक शान्ति का सोपान है।

१३५—गुरु-भक्ति खेल नहीं, जब इसकी कसौटी का दिवस आता है तो संसार के अप्रतिम ललित लावण्य, सुमधुर सम्बन्ध, जागतिक वैभव के स्वर्णिम जीवन को बुद्ध से भी भीषण, दधिचि से भी दृढ़, गोपियों से भी साहसी, भीषण प्रलयाग्नि से भी प्रचण्ड और भीष्म की भयंकर प्रतिज्ञा से भी अचल बनकर एक ठोकर से ठुकरा देना पड़ता है। जो इसकी जयशीलता, गम्भीरता समझता है

वही इस कठोरतम परीक्षा में समुत्तीर्ण होकर मां का पुत्र बनता है और प्राप्त करता है अमृतत्व को ।

* * * *

१३६—प्रेमी अवतारी है ज्ञानी सिद्ध । प्रेमी अनेक के साथ मिलकर अनेक का उद्धार करता है । ज्ञानी सिद्ध दशा में जगत के भय से दूर भागता है । प्रेमी अनेक आत्माओं को मिलकर परमात्मा बन जाता है । प्रेमी आनन्द पाता है ।

* * * *

१३७—वेदान्त श्रवण से सौगुणा मनन, मनन से लाख गुणा श्रेयस्कर, निदिध्यासन और निदिध्यासन से अनन्त गुण निर्विकल्पस्वभाव होता है । अतः मुमुक्षु नित्यप्रति प्रातः और सायं ३ घंटा सिद्धासन से बैठकर आत्म स्वरूप का दर्शन करो ।

* * * *

१३८—सत्य ही परमेश्वर स्वरूप है सत्य ही धर्म का आश्रय है । सत्य ही संसार और परलोक के कार्यों का मूल एवं सत्य से बड़ा कोई पद नहीं । अतः प्रिय हितकर और यथार्थ भाषण करें तथा किसी भी प्रलोभ से सत्य का त्याग न करें ।

१३९—हे राम ! साधु समागम ही विवेक को बढ़ाने, अज्ञान रूपी वृक्ष को काटने, समस्त मानस वेदनाओं का नाश और ताप पाप को मिटाने वाला है । संग के अनुसार मानव मानस पर रंग और प्रभाव के अनुसार पुण्यापुण्य कार्यों में प्रवृत्ति होती है । अतः सज्जन सच्छास्त्र, साकार और अपने सत्यस्वरूप का संग करते चलो ।

* * * *

१४०—माया-अविद्या-और प्रकृति ही जीवन में भयंकर सब से बड़ा त्रिदोष रोग है श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ गुरु ही रोग-निवारण करने वाला कुशल वैद्य है और पञ्चसकार साधना (सत्संग सन्तोष सयम सदाचार और सेवा) इस रोग की महौषधि है । सतत स्मरण और शास्त्रानुकूल व्यवहार ही पथ्य है ।

* * * *

१४१—अठारह पुराणों में व्यास भगवान के दो वचन अत्यन्त सार गम्भीर हैं । परोपकार के समान पुण्य और पर पी के सदृश कोई पाप नहीं । संसार में निष्काम कर्म करना कर्त्तव्य और परोपकार का कारण स्वार्थभाव से कार्य करने में पाप और पर-पी होती है । निष्काम कर्म अन्तःकरण मंजन है ।

पर की

(३२)

१४२—यज्ञ से बचे अन्न को खाने से जीवं सब पापों से मुक्त होते हैं और केवल अपने लिए जो अन्न बनाते हैं वे पाप वृद्धि करते हैं। आहार को सब दोषों से बचा कर रखो पाप न लगेगा।

* * * *

१४३—अज्ञानता में बाल्य भोगों में यौवन और पुत्र कलत्र आदि की चिन्ता में (शेष आयु) ग़सा नराधम परमार्थ कैसे करे।

* * * *

१४४—राग द्वेष से उत्पन्न-मोहादि द्वन्द (सुख दुःख) ग्राह द्वारा असित यह जीवात्मा भूमि में पड़े हुए कीट-पतंग आदि योनियों को पाकर असंख्य दुःख भोगता है।

* * * *

१४५—अपने इष्टदेव को अपने से भिन्न (मैं और हूँ और मेरा इष्टदेव मुझ से भिन्न है) मान कर उपासना करने वाला मनुष्य देवताओं का पशु है।

❀ * * * ❀

१४६—अद्वैत ब्रह्म को जब तक प्राणी नहीं जानते तब तक उन भ्रान्त जीवों को सुख और मुक्ति कहां।

(३३)

१४७—जो अद्वितीय ब्रह्म में नानात्व को और आत्मा को ही कर्ता-भोक्ता आदि धर्म वाला मानता है वह देहाभिमानी मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होकर नाना क्लेशों को प्राप्त होता है।

* * * *

१४८—पदार्थ बन्धन का कारण नहीं पदार्थ विषयक ममत्व ही बन्धन का हेतु है। बन्धन में ही दुःख और अशान्ति है।

* * * *

१४९—अन्तः प्रवेश करने योग्य मार्ग को ढूँढो।

* * * *

१५०—निर्भय होकर और लोक से बाह्य होकर अपने कल्याण का मार्ग ढूँढो।

* * * *

१५१—सच्चा सुख और शान्ति ईश्वर-भक्ति में ही है।

* * * *

१५२—पाप मनुष्य के मन को मैला करता है अतः उससे बचो।

* * * *

१५३—कभी दूसरे का अपमान न करो सभी परमेश्वर की विभूति हैं।

१५४—ब्रह्म सत्य है और संसार मिथ्या है यह विवेक आत्मज्ञान का प्रथम साधन है।

१५५—इस लोक के और परलोक के समस्त विषयों से विरक्ति ही वेदान्त विज्ञान का द्वितीय साधन है।

१५६—शम, दम, तितिक्षा, उपरति समाधान और श्रद्धा यह षट्क आत्म-साक्षात्कार का तृतीयोपाय है।

१५७ - संशयालुता और अश्रद्धालुता मूर्खता के चिन्ह हैं।

१५८—मनुष्य जन्म दृढ़ सामर्थ्य प्रकट कर संसार को सन्मार्ग पर शासित करने के लिए ही हुआ है।

१५९—समस्त विश्व को परब्रह्माभिन्न समझने वाला राग द्वेषादि अन्य विपत्ति में नहीं फँसता।

१६०—मानव के लिये ब्रह्मचर्य ही महातपश्चर्या है और महा-मृत्युञ्जय है।

१६१—सूक्ष्म विचार दृष्टि से छात्र में छात्रत्व, यति में यतित्व, विप्र में विप्रत्व, क्षत्रिय में क्षत्रियत्व, वैश्य में वैश्यत्व, हरिजन में हरिजनत्व और पदार्थ में पदार्थत्व वीर्य रक्षा ही है।

१६२—जो यथार्थ में ब्रह्मचर्य व्रत पालन करता है जो भय से परे है जिसे इच्छाएं छू नहीं सकतीं। ऐसा ही निरीच्छ निर्भय व्यक्ति ही सच्चा संन्यासी होता है।

१६३—ब्रह्मचर्य के बिना कैवल्यमोक्ष की प्राप्ति अति कठिन ही नहीं अपितु अत्यन्त असम्भव है। क्योंकि ब्रह्मचर्य ही ज्ञान है। और ज्ञान से मोक्ष होता है।

१६४ प्राचीनतम ऋषि परमेश्वर को जानने के लिए ही ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते थे।

१६५—ब्रह्मचर्य साधना के त्याग, तप और सन्तोष ये तीन अभिन्न परम सहायक हृदयंगम मित्र हैं।

१६६—नारी मात्र को मातृत्व दृष्टि से देखना ही वीर्य रक्षा की साधना है।

(३६)

१६७—अंगताप और अनंगताप को समान समझने वाला ही सच्चा ब्रह्मचारी होता है।

* * * *

१६८—गुरु की सेवा में अपने स्वयं को निःशेषतः समर्पण करना अर्थात् स्वामी सेवक और सेवा सामग्री इस चित्र का एक हो जाना ही यथार्थ सत्य सेवा रूप ब्रह्मचर्य है।

* * * *

१६९—शिवगणों के अधिपति श्री, ज्ञान वैराग्य, ऐश्वर्य आदि गुणों के अधिष्ठान, निर्गुण पर ब्रह्मकी मूल और बैखरी मध्यमा, पश्यन्ति एवं परा वाणी की जननी श्री शान्तिदा शारदा भगवती को प्रणाम करके प्रति दिन प्रातः सायं आत्माराम राम की भक्ति करो।

* * * *

१७०—यदि शास्त्र मर्यादा का सेवन करोगे तो परमेश्वर की भक्ति की प्राप्ति सहज ही हो जाएगी। आप्त साधु पुरुषों के द्वारा जिन बातों का निषेध किया गया है केवल उन बातों को छोड़कर उनके द्वारा समर्पित बातों को स्वीकार करो।

* * * *

१७१—प्रभात समय श्री भगवान का चिन्तन करते हुए प्रत्येक

(३७)

कार्य को करो। भगवन्नाम स्मरण में सदाचार का विशेष महत्व है, अतएव सदाचार मत छोड़ो। सदाचार ही संसार में सर्वश्रेष्ठ धन है।

* * * *

१७२—दुष्कर्म में प्रवृत्तिकराने वाली वासना और पाप बुद्धि को पास भी न आने दो। सर्वथा और सर्वदा नीति मार्ग पर चलो। अन्तःकरण में सार बातों को विचारो।

* * * *

१७३—पापी और बुरे संकल्पों को त्याग कर सत्य संकल्पों को ग्रहण करो। विषयासक्ति को छोड़ दो क्योंकि इससे संसार में अपयश और भगवान की अप्रसन्नता मिलती है मन में खिन्नता से काम-क्रोध आदि नाना प्रकार के विकारों की उत्पत्ति होती है। मत्सर, लोभ और दम्भ का सृजन होता है।

* * * *

१७४—श्रेष्ठ धैर्य को धारण करो। अपमान सूचक वचनों को सुनकर सहनशीलता उत्पन्न करो। नम्रता से बोलो और सब लोगों को सन्तोष प्रदान करो। दूसरों के द्रव्य के हरण की अभिलाषा छोड़ दो। स्वार्थ परता से पाप संचय होता है। बुरे कर्म पाप के हेतु होते हैं फिर कुपरि-

राम भोगना पड़ता है और मन के अनुसार बातें न हुई तो दुःख होता है। अतः सन्तोष करना सीखो।

* * * *

१७५—भगवान में अखण्ड प्रेम रखो। दुःख स्वयं ही छोड़ दो। यदि प्रारब्ध बश, शारीरिक कष्ट भी आवे तो उन्हें भी सुख मानो। विवेकी बनो। दुःखी न होकर शोक और चिन्ता का त्याग करो। विवेक से देह बुद्धि छोड़ दो और विदेहावस्था कालीन सुख का अनुभव करो।

* * * *

१७६—हृदय से दुर्वासनाओं का त्याग करो क्योंकि काल-मानव के पीछे पड़ा हुआ है, न जाने कब स्वांस का तार टूट जाए। कर्म गति के कारण जगत में जन्म हुआ परन्तु अन्त में मृत्यु का ग्रास बनता है। हजारों मनुष्यों ने जन्म लिया और मर गए। राजा और रंक सभी ने इस मार्ग का अनुसरण करना है। अतः वैराग्य धारण करो।

* * * *

१७७—यह जगत मृत्युभूमि है मनुष्य ऐसा जानता है फिर भी मानव जीवन काल में मैं मैं करता है और अपने को अमर मानता है। यह सबसे बड़ा आश्चर्य है। अचानक ही यहां से चले जाना होगा। अतः जगत में आकर अन्धे कर्म करो।

१७८—लोभ से मनुष्य का अन्तःकरण काला हो जाता है। संसार में फँसता है अतः लोभ का त्याग करो। व्यर्थ की चिन्ता मत करो क्योंकि होने वाली बात अक्सर घट जाती है।

* * * *

१७९—मन में लेश मात्र भी कल्पना मत आने दो। वासना से उत्पन्न होने वाली जन्म मरण की पुनरावृत्ति से मन को निवृत्त करो। कामिनी-कञ्चन की अभिलाषा को छोड़ दो। गर्भवास की यातनाएं बड़ी कड़ी हैं। इसलिए अपने मन को श्री प्रभु के चरण कमलों में लगाओ और मन को ही भेंट कर दो।

* * * *

१८०—असत्य का त्याग कर सत्य बोलो, मित्रभाषी बनो। दूसरों का कल्याण करो।

* * * *

१८१—व्यर्थ भटकने से कोई लाभ नहीं विचार-पूर्वक अन्तःकरण को समझाकर भगवान के स्मरण में लीन करो।

* * * *

१८२—वेद शास्त्र और पुराण जिनका वर्णन करते हैं जिनके मिलने से सन्तोष प्राप्त होता है अपनी समस्त चञ्चलता उसी के अर्पण कर दो और उसी के अखण्ड रूप में लीन रहो।

(४०)

१८३—भगवान के गुणानुवाद के अतिरिक्त और कोई चर्चा न करो। उसमें शान्ति है अन्य में नहीं। कालदेवता क्षण क्षण में आयु को हर रहा है। मृत्यु के समय स्त्री पुत्र आदि कोई काम न आवेंगे अतएव भगवान का स्मरण करो। संसार की अन्य बातें छोड़ दो।

* * * *

१८४—तुम अशरीर शरीरी, अरूप चेतन स्वरूप सर्वकृति सम्पन्न विश्वात्मा के प्रतिनिधि हो। संसार में तुम्हारे आने का विशेष उद्देश्य है। दैवी-शक्ति के साक्षात्-अवतार हो सत्य और दृढ़ निश्चय करो कि तुम सब कर सकते हो।

* * * *

१८५—देहादि दृश्य से आत्मा को विलक्षण एवं परमात्म स्वरूप जानकर साधक रागद्वेषादि द्वन्द्वों से कदापि विचलित, उत्पीडित या व्यथित नहीं होता किन्तु स्वात्मनुभव से सदा सन्तुष्ट रहता है।

* * * *

१८६—रागी जंगल में जाने पर भी वस्तु संग्रह जाल में फँस जाएगा और मन पर अधिकार करने वाला वैरागी घर को तपोवन बना देता है।

(४१)

१८७—सत्यता पूर्वक व्यवहार मनुष्य का आभूषण है। विश्वास घात से मित्रता हट जाती है। सच बोलने से सब बुराइयाँ दूर हो जाती हैं।

* * * *

१८८—अपने आश्रित से सदैव अच्छा व्यवहार करो।

* * * *

१८९—अपनी जिह्वा को वश में रखो वरना दुःख पावोगे।

* * * *

१९०—अपने २ धर्म अनुसार प्रतिदिन ईश्वर पूजन करो।

* * * *

१९१—वर्तमान लाभ को भविष्य की आशा पर मत छोड़ो।

* * * *

१९२—वह जीवन ही क्या ? जिस जीवन में जीवन को आदर्श और मुक्त न बना सके।

* * * *

१९३—वह अज्ञानी अभिमानी है जो सबके मन का मोह मिटा या उसका नाश न कर सके।

(४२)

१९४—वह मदोन्मत्त हस्ति है जो ऊँचा पद पाकर और बल पाकर उसका अभिमान करता हुआ उसका सदुपयोग न कर सके ।

* * * *

१९५—वह बुद्धिमान ही क्या जो आपने समय को व्यर्थ नष्ट करता हो ।

* * * *

१९६—वह सुबुद्धि नहीं जो अतीत की शुभाशुभ घटनाओं की स्मृति रखता है ।

* * * *

१९७—वह मनुष्य ही क्या जो सांसारिक सफलताओं का प्रमुख कारण अपने को समझे और विफलताओं का दोष अन्य के शिर मढ़ता है ।

* * * *

१९८—वह मनुष्य ही क्या जो किसी भी कार्य करने से प्रथम उसकी सफलता और विफलता को विशेष विचारणीय न समझे ।

(४३)

१९९—वह मनुष्य ही क्या ? जो स्व के दोषों को न देखे ।

* * * *

२००—यदि स्थिर शान्ति निरतिशय परमानन्द की प्राप्ति अभीष्ट है तो परमात्मा का दर्शन आत्मरूप से और आत्म दर्शनार्थ मन में भी वैराग्य धारण करो ।

* * * *

२०१—काम क्रोधादि षड्रिपुओं का मान मर्दन करने पर ही यथार्थ शान्ति भी प्राप्त होती है अतएव यथा-शक्ति जागतिक सुख की आशा न रखो ।

* * * *

२०२—अनेक विघ्न बाधाओं की चिन्ता न करके साधक को आगे बढ़ना चाहिये न्यायमार्ग का त्याग कदापि न करो ।

* * * *

२०३—विचार और भावना करने से पहिले कर्त्तव्यनिष्ठ होने की दृढ़ प्रतिज्ञा करो, तब संसार तुम्हारे पीछे चलेगा, साथ ही यह विश्वास रखो कि संसार तुम्हारे पीछे चलेगा ही ।

(४४)

२०४—काम, क्रोध, लोभ मोह का बुद्धि पर आवरण जब तक विद्यमान है तब तक महापण्डित भी महामूर्ख ही है।

* * * *

२०५—शासक वर्ग राजनीति को धर्म निरपेक्ष रख कर स्वयं पतनोन्मुख बन जाता है।

* * * *

२०६—भय, निर्बलता, पाप, भक्षक, और मृत्यु मानुष का प्रबल शक्ति सम्पन्न महाशत्रु है।

* * * *

२०७—मनुष्य जन्म दृढ़ सामर्थ्य प्रगट कर संसार को सन्मार्ग पर शासित करने के लिए ही हुआ है।

* * * *

२०८—निर्बल, स्थान हीन, साधन शून्य और अधिकार-रहित माना गया है। बली पुरुष आत्मलाभ कर सकता है।

‘दैवी दुर्बल घातक’ यह सूक्ति प्रसिद्ध है।

* * * *

२०९—भावना से कर्त्तव्य ऊँचा है।

(४५)

२१०—देना सीखो लेना मत सीखो।

* * * *

२११—अपनी आत्मा के साथ न्याय करना है तो ऊपरी बनावट से बचो।

* * * *

२१२—केवल सत्यता से डरो और किसी वस्तु से नहीं।

* * * *

२१३—स्वाभिमान, स्वज्ञान, संयम ही उन्नति मार्ग पर पहुँचा सकते हैं।

* * * *

२१४—कठिनाइयों से भागो नहीं जहाँ तक हो वीरता से उनका सामना करो।

* * * *

२१५—दूसरों को उपदेश मत दो स्वयं ही उदाहरण बनो।

* * * *

२१६—किसी से कुछ आशा मत रखो अन्यथा निराशा होगी।

(४६)

२१७—अपनी आवश्यकताएं कम से कम रखो ताकि उस अलौकिक प्रसन्नता का भी अनुभव कर सको जो की फकीरों के पास होती है।

* * * *

२१८—दूसरों की भलाई देखो और अपनी बुराई।

* * * *

२१९—किसी की आलोचना मत करो क्योंकि तुम स्वयं भी त्रुटियों से पूर्ण हो।

* * * *

२२०—जो भी करो सत्यता से करो।

* * * *

२२१—केवल व्रत, तीर्थों से मोक्ष नहीं मिलेगा यह तो शुन कर्म करने से मिलेगा।

* * * *

२२२—सत्य सनातन वैदिक धर्म का पालन करो। धार्मिक मनुष्य ही भगवान का कृपापात्र बन सकता है। शास्त्रों ने धर्म बिना मानव को पशु के समान कहा है। अतएव स्वधर्म का पालन यथावत् करना चाहिये। धन, यौवन, वैभव नाशवान है। और एक धर्म ही अमर है। अतः केवल धर्म को ही कल्याण, स्मृद्धि और शान्ति साधन जानकर धर्म का निरन्तर अनुष्ठान करो।

(४७)

२२३—स्वकल्याण और परमार्थ के कार्यों में प्रमाद या आलस्य न करना चाहिये।

* * * *

२२४—वेदादि धर्मशास्त्रों के स्वाध्याय से प्रमाद न करो। शास्त्रों के स्वाध्याय से ही ऋषि ऋण से छुट्टी होती है।

२२५—सब स्थानों पर गुणों की पूजा होती है।

* * * *

२२६—सज्जनों की विभूतियां परोपकार के काम आती हैं।

* * * *

२२७—न्यायोचित धन कमाने में प्रमाद न करो। युवावस्था में कमाया धन ही वृद्धावस्था और दान के कार्य में लगता है।

* * * *

२२८—अपनी माता जन्मभूमि-सभ्यता-भाषा और संस्कृति को देवता समझो एवं तन मन धन से इनकी रक्षा करो। माता के अपमान करने वाले का कल्याण कदापि नहीं हो सकता।

* * * *

२२९—स्वकीय पिता को परमेश्वर मानकर उसकी आज्ञा पालन और सेवा करो। पिता का अपमान ईश्वर का अपमान है। रामचन्द्र के समान पिता की प्रत्येक आज्ञा का पालन करो।

२३०—आचार्य भगवान् को देव मानो और गुरु जी की सेवा एवं उनके बताए मार्ग का त्याग न करो ।

* * * *

२३१—अपने घर पर आए अतिथि को परमात्मा समझ कर उसका यथाशक्ति सत्कार और सेवा करो ।

* * * *

२३२—धर्म-संस्कृति-गरीबों की रक्षा और राष्ट्रोत्थान के लिये श्रद्धापूर्वक दान दो ।

* * * *

२३३—मन, वचन, कर्म से ब्रह्मचर्यपालन करो । ब्रह्मचर्यपालन से ही इस लोक और परलोक में शान्ति प्राप्त कर सकते हो ।

* * * *

२३४—देव दुर्लभ मानव देह पाकर इसे हरिभजन से सफल करो । साधु-सेवा में स्वार्थ और भक्ति में दम्भ न आने दो ।

* * * *

२३५—त्रिविध-शरीर से भिन्न, सबके साक्षी, सच्चिदानन्द धन, आत्मा को जानो और उसका ही सतत विचार करो । सब धर्मों में आत्मज्ञान-रूपी विद्या श्रेष्ठ है और विद्या के समान शरीर का भूषण अन्य कुछ है भी नहीं ।

२३६—संतोषः परमो लाभः सत्संगः परमं धनम् ।
विचारः परमं ज्ञानं शमश्चयः परमं सुखम् ॥

* * * *

२३७—हमारे पूर्वजों की ज्ञान निधि से जिस प्रकार अन्य लोग लाभान्वित हुए हैं वहां तुम भी तो लाभ उठाना सीखो ।

* * * *

२३८—शास्त्रों को कण्ठस्थ कर लेना पाण्डित्य नहीं उनके सिद्धान्तों को जीवन में उतार लेना पाण्डित्य है ।

* * * *

२३९—उठो ! जागो ! अति श्रेष्ठ बनो ।

* * * *

२४०—स्वार्थी मानव नेत्रवान होने पर भी अन्धा है ।

* * * *

२४१—कर्त्तव्य निष्ठा में ही सुमधुर फल है ।

* * * *

२४२—अपने ऊपर अपना शासन उत्पत्ति कारक है और दूसरे पर शासन अवनति कारक ।

* * * *

२४३—वह दानी संसार में अत्यन्त दुर्लभ है जो स्वयं को ही दे दे । केवल भगवान् ही आत्म दानी हैं ।

(५०)

२४४—भगवान की पूजा में जब तक धूप स्वयं नहीं जलता सुगन्धि नहीं दे सकता । प्रकाश फैलने के लिए दीप का स्वयं जलना आवश्यक है तो फिर तू इस ताप से क्यों भागता है प्रसन्नता से वज्र प्रहारों को सहकर प्रकाश-मान बन उदास मत हो ।

* * * *

२४५—विपत्ति और सम्पत्ति में समान रहने वाला ही महान होता है ।

* * * *

२४६—कठिन अग्नि-परीक्षा में सत्य सफल निकल आने पर भी सीता पर कलंक लगा । संसार महापुरुष को जीने नहीं देता ।

* * * *

२४७—योगी अभेद में आनन्दानुभूति करता है और भक्त को लीला में ही आनन्द आता है ।

* * * *

२४८—फूलों की तरह से महापुरुषों की दो अवस्थाएं होती हैं । या तो सबके पूज्य बन कर रहें अथवा जंगल में ही पड़े मुरझा जाते हैं ।

(५१)

२४९—दुष्ट और सज्जनों की मैत्री क्रमशः दिन के पहले और पिछले पहर की तरह होती है । पहले समय की छाया के समान दुष्ट की मित्रता होती है जो पहले तो बड़ी होती है और फिर छोटी होती जाती है । इसके विपरीत सज्जन की मित्रता बाद के समय की छाया की तरह होती है जो पहले छोटी होकर धीरे २ बढ़ती जाती है ।

* * * *

२५० सत्य ही प्रकाश है और असत्य अन्धकार । असत्य रूपी अन्धकार में फंसा हुआ मनुष्य सत्य के प्रकाश से ही सतपथ पर आ सकता है ।

* * * *

२५१—जरा-व्याधि को प्राप्त होने पर भी मनुष्य की आशा और तृष्णा उसके साथ लगी ही रहती हैं ।

* * * *

२५२—पराधीनता सदा दुःख कारक होती है और स्वाधीनता में ही सुख होता है ।

* * * *

२५३—जिसका अन्तःकरण कामनाओं से भरा रहता है उसमें ये पांच बातें नहीं रह सकतीं :—
(१) ईश्वर भक्ति (२) ईश्वर से प्रेम (३) ईश्वर का भय (४) ईश्वर से लज्जा (५) ईश्वर से मित्रता ।

(५२)

२५४—सत्य को कभी मत छोड़ो अन्यथा वह भी तुम्हें छोड़ देगा और सत्य से विलग होने का अर्थ है परमात्मा से विलग होना । परमात्मा ही सत्य है ।

* * * *

२५५—आत्म-ज्ञान होने पर ही जगत स्वप्न की तरह मिथ्या भासने लगता है ।

* * * *

२५६—भगवान का भक्त कभी नष्ट नहीं होता ।

* * * *

२५७—परम सन्तोषी व तृष्णा रहित चित्त की शीतलता का चन्द्रमा, हिमालय पर्वत अथवा चन्दन भी समानता नहीं कर सकते ।

* * * *

२५८—हृदय सरोवर में जब तक कामना की हवा बहती रहेगी । तब तक ईश्वर का दर्शन असम्भव है ।

* * * *

२५९—जल में नाव रहे तो कोई हानि नहीं पर नाव में जल नहीं रहना चाहिये । इसी प्रकार साधक संसार में रहे तो कोई हानि नहीं परन्तु साधक के भीतर संसार नहीं होना चाहिए ।

(५३)

२६०—जिसकी लगन में इतनी तड़पन हो जितनी जल के बिना मछली को होती है वही ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है ।

* * * *

२६१—भगवान तुम्हारे ही हैं । आओ एक बार उन्हें अपना ही समझ कर अपने आपको समर्पण कर दो, फिर देखो वह तुम्हारे होते हैं कि नहीं !

* * * *

२६२—आत्म-शक्ति के सहयोग के बिना परमात्मा भी कुछ नहीं करता ।

* * * *

२६३—कर्म वह है जो मनुष्य को बन्धन में न डाले ।

* * * *

२६४—छिप कर किया अपराध जीवन पर्यन्त शूल की भांति हृदय को व्यथित करता है । अतः ऐसे कार्य से सदा बचो ।

* * * *

२६५—जैसे जैसे मनुष्य अपने किये गये अधर्म को प्रकट करता है तैसे ही वह उससे मुक्त हो जाता है ।

* * * *

२६६—सुख में सुखी और दुख में दुःखी हो जाने वाला मूर्ख, और सदा समबुद्धि रहने वाला पंडित होता है ।

(५४)

२६७—सत्पात्र अथवा अधिकारी को दिया गया दान ही श्रेष्ठ दान है ।

* * * *

२६८—विद्या वही है जो विनय प्रदान करे । विनय से ही मनुष्य सुपात्र बनता है ।

* * * *

२६९—आत्मा का अपने साथ बातचीत करना ही मनन है ।

* * * *

२७०—अपनी शक्ति-सामर्थ्य से अधिक दान देने वाला सज्जन ही श्रेष्ठ पुरुष है ।

* * * *

२७१—अल्प साधन से ही जो बड़ा काम करते हैं वे पुरुषार्थी महान हैं ।

* * * *

२७२—किसी कार्य की अच्छाई-बुराई भावना में ही होती है । स्वयं कर्म में नहीं ।

* * * *

२७३—मनुष्य स्वयं अपने कर्मों द्वारा ही मारा जाता है । मृत्यु स्वयं अपनी शक्ति से नहीं मार सकती ।

(५५)

२७४—संस्कृति वह है जो मनुष्य को मानव-विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँचा कर जीवन्मुक्ति में प्रतिष्ठित करे और जो सर्व सामर्थ्यमयी, सर्वांगीण, सर्वगुण पूर्ण, सर्वकल्याणकारी हो ।

* * * *

२७५—प्राणीमात्र का कल्याण करना हिन्दु-धर्म की विशेषता है ।

* * * *

२७६—आधुनिक समय में सभ्य सुशिक्षित कहलाने वाला वर्ग सैंकड़ों निरीह पशुओं का वध करा कर अपने दैनिकाहार में उन्हें चट कर जाता है । हिन्दु-धर्म की अहिंसा की विचारधारा पर बड़ा आघात है ।

* * * *

२७७—पवित्र संस्कारों से ही मानव आदर्श बन सकता है ।

* * * *

२७८—व्यक्तिगत कर्म का प्रभाव केवल कर्ता तक ही सीमित न होकर नभोमण्डल, तेजोमण्डल, जल-मण्डल और पृथ्वी मण्डल के प्राणी मात्र के लिए और समस्त संसार के लिए शुभकर एवं हितकारी होना चाहिये ।

२७६—संस्कृति वही है जो हम मानवों में सुरुचि उत्पन्न करे,
हमारे चरित्र और व्यवहार को शुद्ध एवं समुन्नत करे।
हमारे भीतर न्याय, निष्कपटता सहानुभूति, समता और
आत्मदर्शन की भावना पैदा करे।

* * * *

२८०—मन आदि शरीर के अवयवों और समस्त पदार्थों में एक
आत्मा ही प्रतिबिम्बित है।

* * * *

२८१—समस्त पदार्थों की प्रियता, सच्चिदानन्द आत्मा से ही
सिद्ध होती है।

* * * *

२८२—चट्टान से भी कठोर और नवनीत से भी कोमल माता
का हृदय होता है।

* * * *

२८३—अन्तःकरण ही वास्तविक मातृ-मन्दिर है।

* * * *

२८४—आत्मा को न जानने वाले को संसार में रोना
पड़ता है।

* * * *

२८५—वेदान्त दर्शन के अभाव में ही भारत देश का पतन
हुआ। वेदान्त ही हमें शक्ति, बल और एकता प्रदान
करता है।

२८६—वेदान्त निराशावाद या परोक्षवाद नहीं। वह तो आशा-
वाद, समदर्शन का सर्वोच्च शिखर है।

* * * *

२८७—वेदान्त से विषमता का नाश होता है। जिनके
विचार उच्च हैं वह छोटे भी महान हैं इसके विपरीत
जिनके विचार निम्न कोटि के हैं वह बड़े भी छोटे हैं।

* * * *

२८८—वेदान्त के विचारों से समस्त देश के प्राणियों को
अनुप्राणित करो। देश बलिष्ठ बनेगा।

* * * *

२८९—एक दुर्भेद्य किले या भवन का निर्माण सरल है। किन्तु
जीवन का निर्माण कठिन।

* * * *

२९०—तुमने मिट्टी पथ्थर से किला तो निर्माण कर लिया यदि
जीवन का निर्माण नहीं किया तो कुछ नहीं किया।

* * * *

२९१—दुःख में रोना और सुख में हंसना तो सरल है किन्तु
दुःख में हंसना और सुख में दुखियों की सेवा करना
अत्यन्त कठिन है।

* * * *

२९२—मनुष्य वह है जो अपने दुःख में हंसता है और दूसरे के
दुःख में आंसू बहाता है।

(५८)

२६३—वह नर नहीं नारायण है जो अपने ऊपर अपत्तियों को
आते देख कर मुस्कराता है और दूसरों का दुःख दूर
करने में जुट जाता है ।

* * * *

२६४—विषयासक्ति सरल है और विषय निवृत्ति अत्यन्त
दुष्कर है । विषय निवृत्ति में ही निःश्रेयस संनिहित है ।

* * * *

२६५—समुदाय में रहना सरल है । अकेले में रहना कठिन है ।
यदि तुम अकेले में डरते हो तो कायर हो । दुर्बल
समुदाय में सुख नहीं उठाता ।

* * * *

२६६—मानवता ऐश्वर्य और वैभव में नहीं, वह तो मानव की
कृति में है ।

* * * *

२६७—अकिंचन होने पर भी जो संतोषी है वही धनवान है ।
धनवान असंतोषी होने से निर्धन ही कहलाता है ।

* * * *

२६८—आयु-धन-जाति से कोई बड़ा नहीं कहलाता । उच्च
विचार ही महानता के प्रतीक हैं ।

* * * *

२६९—स्वार्थमय कर्म से कभी अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता ।

(५९)

३००—'नात्मा मवसादयेत्'

* * * *

३०१—१. सत्त्वापत्ति २. सत्याभाषण ३. सत्संग ४. सत्कर्म और
निष्काम कर्म ५. सात्त्विकाहार आदि सद्गुणों का नित्य
उपार्जन करो ।

* * * *

३०२—तन, मन और वचन से यथाशक्ति ब्रह्मचर्य का
पालन करो ।

* * * *

३०३—जो कुछ कहो उसे कर दिखाओ ।

* * * *

३०४—मास में दो दिन मौन रखो

* * * *

३०५—त्याग, तप, संयम सन्तोष को अपना प्रिय अभिन्न मित्र
समझो ।

* * * *

३०६—अहिंसा की शक्ति अतुलनीय है उसका प्रेरक ईश्वर
माना जाय तो ! चेतन तत्व बिना अहिंसा कदापि
सफल नहीं हो सकती ।

३०७—मनको पवित्र और संयत करने का सरल साधन है कि
विषय दोष दृष्टि और भगवान के नाम का जप ।

* * * *

३०८—जो मन का दास है वह जगत का दास है ।

* * * *

३०९—सब धर्मों का सार यह है कि किसी से घृणा मत करो ।

* * * *

३१०—किसी का दास न बनना ही सच्चा आर्यत्व है ।

* * * *

३११—शिष्य के अनु अनुका निरीक्षण ही दीक्षा कर्म है ।

* * * *

३१२—साध्य-साधक में थोड़ा भेद भी मृत्यु का कारण हो
जाता है ।

* * * *

३१३—हमारा मन ही माया है और माया का कार्य जगत है ।
हम यदि जगत के दुःख से बचना चाहते हैं तो मन का
निरोध करें ।

* * * *

३१४—मन ही माया है ।

* * * *

३१५—एक कर्तव्य विमुख साधक सबैव असफलता को ही
प्राप्त होगा ।

३१६—माता पड़ी विपद में सन्तान किस लिए हम !

* * * *

३१७—मन के निरोध के लिये अत्यन्त प्रिय और स्थायी वस्तु
का ध्यान करना चाहिये ।

* * * *

३१८—क्लेश, कर्म, विपक और आशयों, संस्कारों का आघात
जिसे पीड़ित न कर सके वहीं ईश्वर है ।

* * * *

३१९—जगत-विजेता होने पर भी यदि इन्द्रियों का दास है तो
उसे विजयी नहीं कहा जा सकता ।

* * * *

३२०—संसार के पदार्थों को अग्नि और सर्प की तरह समझ
कर दूर से ही उपयोग करना चाहिये ।

* * * *

३२१—विषयासक्ति मन का रोग है और संसार की दासता का
मुख्य कारण है । इन्द्रियों को भगवान की ओर लगाने से
यह दूर हो सकती है ।

❀ ❀ ❀ ❀

३२२—जो अपना सुधार न कर संसार को सुधारने का प्रयत्न
करता है वह अपने पतन के मार्ग का उद्घाटन करता है ।

* * * *

३२३—वासना का त्याग ही मुक्ति है ।

३२४—भजन और दान को कल पर नहीं छोड़ना चाहिए ।

* * * *

३२५—यदि निष्कपटता का मन में वास है तो ऐसा मानव कलयुग में जन्म लेने पर भी सतयुगी है ।

* * * *

३२६—क्षणिक पदार्थों में राग रखने वाला महा मूर्ख है ।

* * * *

३२७—जिस प्रकार सूर्य की धूप के रहते अपनी छाया अपने में लय नहीं हो सकती । उसी प्रकार राग के रहते भगवत्-प्राप्ति नहीं हो सकती ।

* * * *

३२८—प्रभु के भजन में तल्लीन रहो । महामानव बन जाओगे ।

* * * *

३२९—पाप-रूपी कीचड़ को छुड़ाने के लिए उपदेश और ज्ञान के प्रचार का ठेका मत लो । शायद है उसमें मान प्रतिष्ठा की भूख छिपी हो ।

* * * *

३३०—यह संसार एक सराय है और यहां सभी यात्री हैं ।

३३१—तुम अनन्त जन्मों में अनेक माता-पिताओं पति-परायण महिलाओं, ममता से भरे पुत्रों-पौत्रों और स्वजन, स्नेहियों के प्रेम-भाजन बन चुके हो । परन्तु अब वह तुम्हारे साथ नहीं है । विचारो वर्तमान के पदार्थ क्या रह सकेंगे ?

* * * *

३३२—संसारियों का प्रेम बालू की दीवार है जिसका स्थायी रहना कठिन है ।

* * * *

३३३—महापुरुषों की वाणी और आचरण पर विश्वास रखो ।

* * * *

३३४—प्रेम एक में ही पूर्ण माना गया है और अनेकमें अपूर्ण ।

* * * *

३३५—भगवत् कृपा का पात्र बनने के लिए अहंकाररहित बनना पड़ेगा । वही कर्म हमारे अन्तःकरण की शुद्धि का कारण है जो परमेश्वर की पूजा का हेतु हो ।

* * * *

३३६—यह हमारा शरीर तो मल-मूत्र का पात्र है । किन्तु भगवत्-प्राप्ति भी इसी शरीर द्वारा ही हो सकती है ।

❀ ❀ ❀ ❀

३३७—यदि निरन्तर भगवान का ध्यान हृदय में है तो इन्द्र भी उसके सामने कुछ नहीं ।

(६४)

३३८—अपने मन को गुरु के इतना अनुकूल करदो कि गुरु भी समझने लग जाए कि इसका मन तो मेरे ही मन का प्रतिबिम्ब है।

* * * *

३३९—यदि संसार में सन्त न हों तो संसार का विध्वंस हो जाए।

* * * *

३४०—शरणागति के बिना निर्भयता नहीं आती।

* * * *

३४१—प्रेम हो तो गोपियों जैसा जिनको सारा जगत ही कृष्ण-मय दीखता था।

* * * *

३४२—विद्वान का समय भगवत्-चर्चा और साहित्य-अवलोकन में व्यतीत होता है, निद्रा कलह से मूर्खों का।

* * * *

३४३—प्रेम होना चाहिये-भगवान खिचे चले आते हैं।

* * * *

३४४—चरित्र-निर्माण का महान उदगम तो आध्यात्मिक शिक्षा में ही है।

* * * *

३४५—अपकार करने पर भी जो उपकार करता है वही सन्त है।

(६५)

३४६—जहाँ पर प्रेम केवल प्रेम के ही लिए होता है वहीं पर निर्मल-भाव की ही सृष्टि होती है।

* * * *

३४७—कर्म के मूल में भाव ही प्रधान है-कर्म की अपनी सत्ता कुछ नहीं। यदि भाव-उत्तम व निर्मल है तो वह कर्म अवश्य तुच्छ होने पर भी महान है।

* * * *

३४८—यदि जीवन में कुछ कर जाना चाहते हो तो हिमालय को देखो जो असंख्यों वर्षों से प्रकृति के थपेड़े खाकर भी दृढ़, अडिग, निश्चल खड़ा है

* * * *

३४९—धैर्य और परिश्रम से ही हम कुछ कर सकते हैं। शीघ्रता और अधैर्य सफलता के मार्ग में बाधक हैं।

* * * *

३५०—जीव ! उस अलौकिक कलाकार की कला को देखते हो न जरा ध्यान से देखो- एक २ वस्तु में, एक-एक अणु में उसकी अवर्णनीय कला का दर्शन होता है। तुम्हारे ही शरीर को हर समय उसके ही साथ बड़ा करते रहते हैं अथवा कुछ न कुछ भिन्नता प्रदान करते रहते हैं। इसी से ज्ञात होता है कि वह हरदम तुम्हारे पास रहता है।

(६६)

३५१—उस अलौकिक कलाकार के अलौकिक हाथों द्वारा बनाये गये तुम स्वयं उसकी ही अलौकिक कृति हो ! अपनी इस अलौकिकता को पहचानों ! अपने को भूल कर क्षुद्र बनने की कोशिश मत करो ।

* * * *

३५२—क्रोध- (और वह भी असमय का !) सबसे बड़ा हिंसक जन्तु है जो स्वयं क्रोधी को ही डस लेता है ।

* * * *

३५३—लोभ लोभी का अन्त करके ही अपनी मृत्यु को प्राप्त होता है ।

* * * *

३५४—मोह करना है तो प्रभु से करो- तभी सच्चा सुख मिलेगा । नश्वर वस्तु का मोह क्षणिक सुख देकर अन्त में दुःखदायी होता है ।

* * * *

३५५—यदि तुम बहुत संकट में हो और किसी भी प्रकार तुम अपने हृदय को ढाँढस बंधाने में असमर्थ हो तो उठो महापुरुषों की दिव्य वाणी का रसलाभ करो अवश्यमेव तुम्हें शान्ति मिलेगी ।

* * * *

३५६—विशाल अट्टालिकाओं के निर्माण ने हजारों देशभक्तों का रक्तपान किया हुआ है !

(६७)

३५७—चौरासी लाख योनियों में से सर्वोत्तम तुम्हें मानव देह प्राप्त हुई है । इस विशेषता को समझ कर विवेक द्वारा इसका उपयोग करो ।

* * * *

३५८—काष्ठ, पत्थर और कागज आदि में भगवान नहीं । भगवान तो केवल भाव में ही है । जहाँ भावना होगी वहीं भगवान मिलेंगे ।

* * * *

३५९—साधक की समस्त कुभावनाओं का विध्वंस करने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है ।

* * * *

३६०—साधक के मन में किसी भी कारप्र का तर्क का न उठना ही शिष्यत्व की पूर्णता है ।

* * * *

३६१—विचारशील बनो अनुभवी बनो और विवेकी बनो ।

* * * *

३६२—हिमालय की दृढ़ता, सागर का गाम्भीर्य और मां वसुधा की सहनशीलता का उदाहरण लेकर पुरुष महान बन सकता है ।

* * * *

३६३—मित्रता तभी तक निभ सकती है जब तक दोनों ओर से निभाई जाए ।

३६४—देख मत, यह कहना तो छिपकर देखने की प्रेरणा देता है। अतः मन के द्वारा पदार्थों के अधिष्ठान चेतन तत्त्व तक देखना सीखो।

* * * * *

३६५—बाल सुलभ या स्त्री सुलभ चंचलता से विवेक बुद्धि स्थिर नहीं हो पाती। ऐसा देखो जो एक से भिन्न कुछ न देखे।

* * * * *

३६६—संसार में अत्यन्त सरल होना भी घातक है।

* * * * *

३६७—नाम जपने वाला कोढ़ी भी महान है और नाम विमुख ब्राह्मण भी चाण्डाल है।

* * * * *

३६८—करोड़ अपराध करने पर भी माता का हृदय क्षमा कर देता है।

* * * * *

३६९—संशयशील मानव एक भयङ्कर शत्रु है।

* * * * *

३७०—जिसमें उपहास अथवा कष्ट सहने की शक्ति है। पूजा भी उसी की होती है।

* * * * *

३७१—अज्ञानी एक पशु है जिसका कार्य केवल संसार के भोग हैं।

३७२—ईश्वर और धर्म का सहारा लेने पर ही संसार में मनुष्य विजयी होता है।

* * * * *

३७३—धार्मिक व्यक्ति का मुख सदैव प्रसन्न रहता है।

* * * * *

३७४—कलयुग में आध्यात्म ग्रन्थों का अध्ययन करना ही महान तप है।

* * * * *

३७५—मानव जीवन ही एक ग्रन्थ है यदि पढ़ा जाये तो।

* * * * *

३७६—जिसका मन सन्तोषी है वह सड़क कुटने वाला मजदूर भी राजा है।

* * * * *

३७७—सत्य से ओत प्रोत स्वतन्त्रता ही स्थायी होती है।

* * * * *

३७८—प्रत्येक भारतीय ही अपने को 'मैं भारत हूँ' ऐसा समझे तभी भारत की स्वतन्त्रता कायम रह सकती है।

* * * * *

३७९—जल से शरीर, सत्य से मन, ज्ञान से बुद्धि विद्या और तप से अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

३८०—शक्ति से शक्ति उपान कर्म से कर्म व्यय करना ही शक्ति अवस्था का सुधार है।

३८१—अमर कठोर लकड़ी को काट देता है किन्तु स्वयं कमल पुष्प द्वारा अवरुद्ध हो जाता है।

३८२—प्रगल्भी जीव के जीवन को देखकर ईश्वर हँसता है।

३८३—कर्म हीन व्यक्ति ही दैव-दैव पुकारते हैं।

३८४—कपास दूसरे के दोषों को ढकती है मनुष्य दूसरे के दोषों को प्रकट करता है।

३८५—सिंह भूला मर सकता है पर घास नहीं खाता।

३८६—स्वधीनता की घास की रोटी भी अच्छी-परधीनता की खीर भी त्याग्य है।

३८७—आशाओं का दास कभी महान नहीं हो सकता।

३८८—ईश्वर उद्यति को क्षण प्रत्येक को देता है पर साधक उस क्षण को मूर्खाने कर सके तो।

३८९—अभिमान गौरव और मिथ्या प्रतिष्ठा की भूख को समाप्त करके ही भावू बन जा सकता है।

३९०—काम क्रोध की आड़ में भावजन छिपा है।

३९१—अविश्रवस से मित्रता नष्ट हो जाती है।

३९२—दुर्जनता एक ऐसा अवगुण है जो मानव को दानव बनाती है।

३९३—दुर्जन के छोड़ने में महानता नहीं, दुर्जन की दुर्जनता को छुड़वाना महान कार्य है।

३९४—दुर्जन को अपनाकर सज्जन बना देना ही साधुता है।

३९५—“संसार की दृष्टि मुझ पर न पड़े। मुझे तेरे बच्चों से भावजन न जाने क्यों भय लगता है।”

३९६—जिस त्याग में अपनी आत्मा का हनन हो वह त्याग नहीं कहलाता।

(७६)

४२४—भगवान-भास्कर पृथ्वी से १ गुणा लेकर १० गुणा देता है। मनुष्य भी यदि एक श्वास से दस नाम लेकर भगवान को वह श्वास लौटाए तो कितना अच्छा हो।

* * * *

४२५ मानव जीवन में जय के लिए प्रथम ही पुरुषार्थ चाहिये।

* * * *

४२६ वरसने वाले बादल गरजते नहीं। मनुष्य भी कहने की बजाए करे तो कितना अच्छा।

* * * *

४२७—निदक, कृतघ्न, हिंसक और अकारण क्रोधी ये चारों ही चाण्डाल के समान हैं।

* * * *

४२८—संसार में सबकी औषधि है किन्तु संशय की कोई औषधि नहीं।

* * * *

४२९—सौलह शृंगार करने पर भी नाक के बिना सुन्दरता जिस प्रकार फीकी है उसी प्रकार अच्छे कुल में जन्म लेने पर भी भगवान का भजन न करने वाले का जन्म निरर्थक है।

* * * *

४३०—शरीर को अनित्य और धर्म को नित्य समझ कर धर्म संग्रह करना चाहिए।

(७७)

४३१—सूखे का मौन, चोर का मिथ्या भाषण, दुर्बल का राजा और बालकों का रोना ही बल है।

* * * *

४३२—दुनियां में जितने भी धर्म हैं वे सब तत्कालीन परिस्थिति और हिन्दु-धर्म की किसी विशेषता को लेकर पनपे हैं इसलिए विश्व की संस्कृति ही वैदिक संस्कृति है।

* * * *

४३३—हिन्दु संस्कृति का यह निर्दोष सिद्धान्त है कि व्यक्ति अपने तिल-तिल को गलाकर समष्टि में हवन करे तभी राष्ट्र और विश्व का कल्याण सम्भव है।

* * * *

४३४—परिष्कृत भोगवाद ही आज का सुधारवाद है।

* * * *

४३५—उच्चकोटि की मक्कारी का ही नाम आज का कम्युनिज्म है।

* * * *

४३६—प्रेम और परमात्मा का स्वरूप एक ही है जैसे सूर्य और उसके प्रकाश में अभिन्नता है वैसे ही प्रेम में ही परमात्मा का निवास है।

* * * *

४३७—क्रिया और क्षमता-युक्त होना ही जीवन नहीं -जीवन तो मानवता में है।

(७८)

४३८—मानवता-शून्य जीवन तो केवल जड़-यन्त्र की हलचल के समान है।

* * * *

४३९—दुनिया में एक ही ऐसा साहित्य है जो मानव मात्र की इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति का साधन है और वह है वैदिक साहित्य।

* * * *

४४०—जीवन वही है जिसकी जगमगाहट से जगत ही जगमग हो जाए।

* * * *

४४१—प्रत्येक प्राणी प्रतिपल पूर्णानन्द का प्यासा है। वह आनन्द अथक परिश्रम करने पर भी बाहर नहीं मिलता यदि मिलता है तो केवल अपने ही भीतर।

* * * *

४४२—शिक्षा का तात्पर्य ज्ञान वृद्धि नहीं उसका उद्देश्य तो मस्तिष्क को निर्दोष और विकसित करना है।

* * * *

४४३—मानव के मन की प्रसन्नता ही भगवान का पुण्य प्रसाद है।

(७९)

४४४—मानव मस्तिष्क के विकास की शिक्षा शैशव काल से ही प्राप्त होती है।

* * * *

४४५—पाठशाला और विश्वविद्यालयों से निकले हुए विद्यार्थी प्रमादी हो सकते हैं परन्तु विकसित मस्तिष्क वालों को आलस्य नहीं छूता।

* * * *

४४६—सत्य एक वृक्ष है उसकी जितनी सेवा की जाती है उतने ही फल प्राप्त होते हैं।

* * * *

४४७—तुम स्वच्छ विचारों को अपनाओ-सफलता देवी क्षितिज के बादलों की ओट में तुम्हारे लिए आरती लिए खड़ी है। दृढ़ता पूर्वक आगे बढ़ो-सफल और विजयी बनो।

* * * *

४४८—भगवान हमारे अन्दर अपनी समस्त शक्ति, माधुर्य, सौन्दर्य और आनन्द को साथ लेकर बीज रूप से छिपे हुए हैं। उन छिपे चोर को ढूँढ निकालना उस बीज-रूप को पूर्ण रूपेण, वृक्ष रूप में परिवर्तन (परिणत) करना ही समस्त साधन, भजन का सार और उद्देश्य है।

* * * *

४४९—साधन प्रारम्भ मूलाधार में क्षितितत्त्व में होता है। उस तत्त्व के अधिष्ठित चैतन्य श्री गणेश हैं अतएव सबसे प्रथम उनकी पूजा होनी चाहिए। ये तो कुण्डलिनी-शक्ति की सुषुप्ति अवस्था को समाप्त करते हैं। शक्ति की जागृति के बिना साधन सफल कहाँ।

ती
नु-
को
व

४५०—ज्ञान का काम है अप्रकट को प्रकट करना। अज्ञेय को ज्ञेय की सीमा में ले आना। अव्यक्त को व्यक्त करना। मानव जीवन के प्रयास को सफल बनाना और आद्याशक्ति मां का साक्षात्कार कराना।

* * * *

४५१—मां की आराधना में शक्ति की साधना में जाति का अधःपतन कभी हो ही नहीं सकता। हमें मुक्त कण्ठ से स्वीकार करना होगा कि भारत मां की उपासना भूल गया है, भगवान या मां के आसन पर शैतान को बैठा कर विद्या को छोड़ अविद्या के द्वारा आर्य धर्म की अवनति कर रहा है।

* * * *

४५२—भारत सब बातों में विश्व का गुरु था। पर अब वह अपने स्वरूप को भूलकर अधःपतन की ओर जा रहा है।

* * * *

४५३—मां आद्याशक्ति की उपासना कर शक्तिमान बनना चाहिये।

* * * *

४५४—शक्ति की सारी शक्ति और वीरत्व आज केवल वार्तालाप का विषय बन कर जाति को अत्यन्त शक्ति-हीन कर रहा है।

४५५—चैतन्यमयी पवित्रतमा मां उच्च कण्ठ से घोषणा करती है कि मुझे पुकारो ! पूजा करो ! मेरे विधान के अनुसार चलो। मैं तुम्हारे सब अभावों, समस्त दुःखों, को दूर कर दूँगी। जहाँ मैं रहूँगी मेरे साथ-साथ मेरी सब विभूतियाँ वहीं निवास करेंगी।

* * * *

४५६—देव-असुर, बुद्ध-मार, ईसा, शैतान, राम और रावण आदि समस्त संग्राम रंगमंच पर देखने पर कौन बड़ा, कौन छोटा है किसकी आवश्यकता अधिक है यह बतलाना कठिन है तथापि देव, बुद्ध, ईसा और राम के अनुसार आचरण करने से प्रगति का पथ प्रशस्त होता है।

* * * *

४५७—आदर्श जीवन, आदर्श धर्म में हम इस भीतर और बाहर कितना सुन्दर सामन्जस्य देखते हैं। वेद, कुरान, बाइबिल, धम्म पद आदि धर्म शास्त्र अन्दर के पारमार्थिक तत्त्व को देखकर जीव को सन्तोषी बनाते हैं। परन्तु आज का विज्ञान-शास्त्र बाहर की दौड़-धूप में ही लगा है।

४५८—जो अज्ञात है जिसे सब नहीं जानते जिस ओर सर्व-साधारण की दृष्टि नहीं पड़ती जो अत्यधिक निकट और अत्यन्त आवश्यक है उस ओर दृष्टि आकर्षित करना शास्त्र का उद्देश्य है।

* * * *

४५९—एक ओर आत्मा और दूसरी ओर स्थूल देह इन दोनों के मध्य में हमारा मन है स्थूल में आसक्ति कष्ट और आत्मा में प्रेम मुक्ति देता है।

* * * *

४६०—प्रकृति और पुरुष के वास्तविक समन्वय को न जानकर ही जीव ठोकर खाता है।

* * * *

४६१—सब धर्म मतों में सब साधन प्रणालियों के अन्दर एक तत्व अनुभव में आता है आत्म-सन्तोष।

* * * *

४६२—विवेकी को ही सुख प्राप्त होता है।

४६३—स्वार्थी लोगों ने ही धर्म सिद्धान्त को विघटन कर अनेक मतों की सृष्टि कर दी है। अर्थात् बहुमत संसार बन गया है।

* * * *

४६४—सब धर्मों का सार सनातन धर्म है बहुमतों को तोड़ कर और सनातन धर्म पर आए हुए विकारों को हटाकर ही सनातन धर्म का विशेष हितैषी रूप प्रकट हो सकता है।

* * * *

४६५—जिम प्रकार बालक माता की डांट-फटकार और दण्ड पाकर भी गोद में बैठकर प्यार पाता है उसी प्रकार जगन्माता को जीवों से व्यवहार होता है अतः हे जीव ! तू कभी निराश मत हो। जगत जननी यदि आज तेरे जन्म जन्मांतरों के किए अपराधों पर डांट-फटकार दे रही है तो कल अवश्य ही वह अपना स्नेह तुझ पर उड़ेलेगी। उस प्यार को पाने के लिए तैयार हो।

* * * *

४६६—संतुलित मस्तिष्क द्वारा ही मनुष्य का विवेक जागृत रहता है। विवेक ही मनुष्य को अनुचित कार्य, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि विकारों से मुक्ति देता है। अतः विवेक को स्थिर रखने के लिए अपने मस्तिष्क का संतुलन बनाए रखो।

४६७—विधाता को मत दोष दो। तुमने जन्म जन्मान्तरों में इतने कुकृत्य किये हैं कि वह उन्हें बारी २ क्षमा की अग्नि में जला २ कर भी शेष नहीं कर सका। दोष तुम्हारा ही है। परन्तु निराश न हो।

* * * *

४६८—जिसकी आंखें खुल गई हैं जिसका चित्त शुद्ध और शान्त हो गया है वह यहां बैठे ही बैठे भगवतधाम की नित्य लीला का आस्वादन कर उस आनन्द धाम में होने वाले सुख का अनुभव जीवन में ही करता है।

* * * *

४६९—प्रकृति-पूजा सहज नहीं। पूजा करती है मां-प्रकृति देवी उनकी पूजा में सहयोग देते हैं उनके चन्द्र-सूर्य तपन, सुनील आकाश, सुगम्भीर समुद्र, सुविशाल वनस्पति और फल-फूल-राशी ! देवता-लोग भी इस पूजा को देखकर समाधि मग्न हो जाते हैं। हे साधक ! तू भी इस पूजा को करना सीख !

४७०—मुक्त पुरुष अवतारों के गुणों के ऊपर उठकर उदासीन भाव से माया को आधीन कर लीला के बहाने स्वेच्छा-पूर्वक माया-रज्जू को ग्रहण कर संसार-रूपी जंगल में आनन्द से रहते हैं। अज्ञानी जीव माया के आधीन होकर विवाह-बन्धन में आसक्त होकर संसार में चक्रकाटता है।

* * * *

४७१—भारतीय समाज अपने आचार व्यवहार धर्मानुष्ठान छोड़ कर विदेशी सभ्यता के मोह में फंस कर पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। हिन्दु सभ्यता यदि अंश मात्र में भीतर बनी रहे तो अपनी इस बढ़ती हुई दुःखावस्था को तोड़ सकते हैं।

* * * *

४७२—यदि आधुनिक और प्राचीन सभ्यता की तुलना की जाये तो प्राचीन सभ्यता ही हमारे देश और विश्व की रक्षक सिद्ध होती है यदि वह वर्तमान की साड़ी पहने तो !

४७३—ईश्वर को भूल कर सर्व-साधन सम्पन्न दक्ष-प्रजापति और सब बलों से युक्त रावण भी संसार यात्रा में सफल नहो सका तो हे आधुनिक मानव ! तू ही आधुनिक बल और साधन पर इतना क्यों इतराता है ।

* * * *

४७४—जीव की यात्रा आरम्भ होती है पशुत्व से और पशु परिणत होता है मनुष्य में । मनुष्य से देवता के रूप में परिणति होती है अर्थात् बाल्य काल से उत्तरोत्तर ज्ञान की वृद्धि होते जाना ही ज्ञानी का लक्षण है ।

* * * *

४७५—'मेरा' कहलाने योग्य सांसारिक पदार्थों को परमेश्वर के अर्पण कर दो चिन्ता से मुक्ति पाओगे और संसार यात्रा निश्चिन्तता पूर्वक पूरी कर सकोगे !

* * * *

४७६—संसार में जितना भी सौन्दर्य व आनन्द है वह सब भगवान का ही प्रति रूप है ।

४७७—अनेक देखने की बुद्धि अनेकता देती है और एक देखने की एकत्व ।

* * * *

४७८—मानवीय व्यवहार पर जैसा प्रभाव उपनिषद ज्ञान-विज्ञान का हो सकता है वैसा अन्य का नहीं ।

* * * *

४७९—कर्म काण्ड का तात्पर्य है कि मन्त्र के ऋषि देवता छन्द का ज्ञान प्राप्त न कर खाली मंत्र करने वाला व्यक्ति गढ़े में गिरता है ।

* * * *

४८०—मन को वश में करने का सरल साधन है कि मन से अलग होकर निरन्तर मन के कार्यों को देखते रहना क्योंकि जब तक हम मन से मिले हैं तभी तक मन में इतनी चञ्चलता है ।

* * * *

४८१—ज्ञान रूपी भक्ति प्राप्त हो जाने पर संसार के बन्धन अपने आप टूट जाते हैं ।

४८२—दुःखी प्राणियों पर दया करने से चित का मल नष्ट होता है और ईर्ष्या-द्वेष चित्त में मल बढ़ाते हैं ।

* * * *

४८३—कर्तव्य-संग्राम में कोरी भावनाओं का मूल्य कुछ नहीं कर्म ही अस्त्र है और कर्म ही युद्धक्षेत्र !

* * * *

४८४—प्राणी ! माना कि तेरी ऊँची भावनाएं-तेरे मानव हृदय की अमूल्य निधि हैं परन्तु उन्हें हृदय के दायरे में ही सीमित मत रख । उन्हें कर्म-क्षेत्र में उतार ले तभी वह विकसित पुष्प की भाँति सुगन्धि देगी ।

* * * *

४८५—जिस प्रकार अन्यन्त स्वादिष्ट भोजन भी नमक के बिना फीका है उसी प्रकार भावना-रहित उत्तम कर्म भी सार-हीन है ।

* * * *

४८६—साधक की साधना में आलस्य घोर शत्रु है ।

४८७—उपासना और भक्ति दोनों शब्दों का अर्थ सेवा, परिचर्या, शुश्रूषा होता है । उपासना का प्राण भक्ति और ध्यान कलेवर है । जिस तरह शरीर में प्राण न रहने पर उसकी उपयोगिता कोई नहीं रहती उसी तरह भगवद्भक्ति के बिना उपासना एक खिलवाड़ मात्र है ।

* * * *

४८८—मन को रोकने के लिए अभ्यास और वैराग्य अमोघ साधन हैं । तत्परता, जितेन्द्रियता और श्रद्धा मनोनिरोध के प्राण हैं । जब इनसे युक्त होकर मन ध्यान करता है तब उसे आनन्द आता है ।

* * * *

४८९—जैसे जलाशय में, दर्पण में, मनुष्य अपना मुख देख लेता है । अपने को प्रत्यक्ष कर लेता है वैसे ही अपने अन्तःकरण में चित्त वृत्तियों को निरुद्ध करके द्रष्टा परमेश्वर का स्वरूप भी देख सकता है ।

(६०)

४६०—समदर्शन और साम्यवाद ही समाज के लिए भारतीय संस्कृति का उपदेश है।

* * * *

४६१—सर्वस्व अर्पण ही निष्काम भाव है, और आत्मा में कर्तव्य का सम्बन्ध मानना ही सकाम है।

* * * *

४६२—जीव एक साथ इन्द्रियों का दास और ब्रह्माण्ड का स्वामी नहीं बन सकता।

* * * *

४६३—मानव के अनुराग के हेतु गुण होते हैं बल और शासन नहीं हो सकते।

* * * *

४६४—महापुरुषों की पवित्र रहस्य युक्त अमृत मयीवाणी में यह शक्ति होती है जो कि मानव को दृष्टि अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। किन्तु उन महापुरुषों की वाणी को हृदयंगम करने की शक्ति होनी चाहिये।

* * * *

४६५—मानव के हृदय आकाश में जब ज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश प्रचण्ड होता है तो अज्ञान रूपी संसार दूर हट जाता है।

(६१)

४६६—समस्त आस्तिक और नास्तिक दर्शनों का एक ही मुख्य तात्पर्य है आत्मा आत्मदर्शन, लक्ष्य की प्राप्ति, विकारों का नाश, मानवता का आविष्कार।

* * * *

४६७—शास्त्रों में वाङ्मयी पूजा का विशेष महात्म्य है, क्योंकि उसके द्वारा साधक के चित्त का लगाव अहिंसा अपने आराध्य के चरित्रों के अनुशीलन में संलग्नता का वृद्धि करता है।

* * * *

४६८—शिक्षा का ध्येय मन का संयम और स्वराज्य सिद्धि है।

* * * *

४६९—विवेक मनुष्य की सब से बड़ी निधि है क्योंकि सब होने पर भी विवेक के अभाव में मनुष्य पशु के समान है।

* * * *

५००—अत्याचार करना पाप है परन्तु अत्याचार सहना महापाप है।

❀ समाप्त ❀

॥ प्रार्थना ॥

हे ईश्वर ! रोग हारी ! शीतल मंद सुगंध पवन हमारे स्थानों में चलाओ । समस्त पापहारी ! सर्वप्रेरक अंतर्दामी भगवान् ! सूर्य का उदय हमारे लिए कल्याणकारी हो ! सुखद औषध-रूप किरणों से सब जीवों को स्वास्थ्य प्रदान करो । सुखद गरजन करने वाले और धान्यदि की उत्पत्ति में परम सहायक मेघ प्राणी-मात्र की तृप्ति का कारण बने । सभी देव हमारे जीवन-उपयोगी साधन प्रदान करें । दिन रात अथवा प्रतिक्षण सर्वत्र हमको अभय प्राप्त हो । समस्त प्राणियों को हम मित्र की दृष्टिसे देखें । प्राणी मात्र को सुखी करने की शक्ति हमको दो । हे परमेश्वर ! हमारी जाति में बुद्धि पराक्रमी आदर्श पुत्र और पुत्रियां उत्पन्न हों । धन और बुद्धि का भी योग हो । हे ईश ! मेरे समस्त शत्रुओं को अपने तेज से दग्ध कर दो । हे व्यापक ! हमारे सब रोगों का भली प्रकार नाश हो । हे

प्रभो ! इस संसार में समस्त इन्द्रियों की शक्ति सहित पवित्र बनाकर हमें रखो ! हे पिता ! हे नारायण ! सब प्रकार के आसुरी भावों को मिटा कर कृपण, पापाभिलाषी और हिंसक भावों से हमें बचाओ । हे गुरो ! कुबुद्धि हमें प्राप्त न हो ! धर्म संस्कृति परम्परा और ज्ञानियों की सेवा के निमित्त हमें तन, मन, धन का बल दो । हे परमात्मन् ! हम स्वाध्याय से प्रमाद न करें और हमें अविनाशी तत्त्व प्राप्त हो ।

दोहा

सर्वे सुखिनः सन्तुः सर्वे सन्तुः निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भागमवेत् ॥

मंडल के मुख्य सदस्यों की नामावली

श्री सीता कान्त शुक्ला	—वाराणसी
„ विश्वनाथ पुरी	—लखनऊ
„ चमन लाल अग्रवाल	—वम्बई
„ कीका सेठ	„
„ रामेश्वर अग्रवाल	—दिल्ली
„ कलिराम जी	„
„ भगवान दास मंचंदा	„

मनातन धर्म के प्रचार के उद्देश्य से ही महाराज के द्वारा आध्यात्मिक सत्संग मंडल की स्थापना संवत् विक्रय २०११ विजयादशमी (१९५४ दशहरा) के समय हुई। यह सत्संग मंडल भारतवर्ष में बहुत अच्छा कार्य कर रहा है लेख-व्याख्यान स्वाध्याय-पुस्तक प्रकाशन आदि द्वारा समाज को सुसंयत देखने का सुस्वप्न देखता है। मंडल के सदस्य व सदस्याओं ने दो विशाल आश्रमों जगद् गुरु संन्यास आश्रम-कनखल-हरिद्वार शिव मंदिर-वजीरावाद-पी० ओ० तीमारपुर-दिल्ली की स्थापना भी कराई, इन आश्रमों में विशाल भवन, श्रेष्ठतम संस्कृते पाठशाला की भी आयोजना है। जहाँ पढ़कर साधू-ब्राह्मण और देश के बुद्धि जीवी ठोस विद्वान् होकर समाज का निर्माण करें ऐसा हमारा प्रयत्न है। इन संस्थाओं के आचार्य भगवान शंकर भगवद् पादाचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित छः पीठों में विख्यात-श्री निरंजन पीठके भी आचार्य महामण्डलेश्वर बनते हैं। वह अपने देश-व्यापी प्रचार द्वारा जनता को धर्मनिष्ठा में लगाते हैं। मेरी भावना है कि सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय हमारा आयोजन सिद्ध होगा।

भारतीय साहित्योद्यान के चुने और आचार्य-
महामण्डलेश्वर श्री प्रकाशानन्द जी महाराज के
श्री मुख से प्रकटित शुभ विचारों सूक्तियों का यह
स्तम्भ आपके अशान्त मन को शान्ति और समय
पर सावधानता प्रदान करेगा ।

गुरु भगवान् द्वारा लिखित पुस्तकें

१. प्रकाशानन्दी हिन्दीटीका सहित शिवमहिम्नः स्तोत्रम्।
२. " " " " शिवसहस्रनाम स्तोत्रम् ।
३. विचारचन्द्रोदय .
४. शिवरात्री का चूहा